AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

भक्ति आंदोलन का उदय और देशकाल

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. प्रदीप कुमार सिंह,
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
पी सी विज्ञान महाविद्यालय,
जयप्रकाश यूनिवर्सिटी,
छपरा, बिहार, भारत

शोध सार

भक्ति मनुष्य जीवन की आत्यंतिक रसात्मक अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति व्यक्ति के मन में अनेक भावों के माध्यम से, अनेक विचारों के माध्यम से समय–समय पर किसी अज्ञात शक्ति के सगुण आलंबन स्वरूप को लेकर प्रकट होती रहती है। भक्ति का यह स्रोत हर देश में तथा उस देश के साहित्य में अनादिकाल से व्यापक बना हुआ रहता है। मनुष्य की प्रवृत्ति ऐसी है कि जब तक वह अपने से ऊपर किसी शक्तिमान सत्ता का आश्रय नहीं ले लेता तब तक अपने में एक अपूर्णता का बोध उसे होता रहता है। यह शक्तिमान सत्ता दैवीय गुणों से परिपूर्ण रहती है। यही दैवीय गुण मनुष्य के मन में भगवान और उसके स्वरूपों की कल्पना को परिपुष्ट करते हैं। भारतीय दर्शन में भक्ति आंदोलन की भूमिका और भक्ति आंदोलन का चिंतन केवल मध्यकाल को लेकर करना समीचीन नहीं है। भक्ति का उदय मध्यकाल में ही नहीं हुआ, अपितु मध्यकाल से भी पूर्व ऋग्वैदिक काल से इसके साक्ष्य हमें प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में विष्णु सूक्त भगवान की सगुण भक्ति का प्रधान आधार है। ऋग्वैदिक काल के पश्चात् भक्ति के विभिन्न संप्रदायों में भगवान की भक्ति के स्वरूप का विवेचन हुआ है। प्राचीन काल में भक्ति के अनेक संप्रदाय थे, जिनका प्रधान केंद्र उत्तर भारत ही था। इनमें पंचरात्र, भागवत, सात्वत आदि थे। उत्तर भारत में ही सर्वप्रथम भक्ति आंदोलन और उसके साहित्य का प्रबल प्रमाण हमें प्राप्त होता है। भक्ति के उदय को दक्षिण भारत से मानना और दक्षिण भारत के साहित्य को भक्ति का प्रधान केंद्र मानना यह समीचीन नहीं है। वर्तमान में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि भगवान की सगुण भक्ति का प्राचीन केंद्र उत्तर भारत ही है और उत्तर भारत से ही भगवान की भक्ति संपूर्ण भारत में और संपूर्ण भारत सहित अन्य देशों में और उन देश के साहित्य में किसी न किसी रूप में देखने को मिल जाएगी। इस प्रकार भक्ति को विदेशी प्रभाव मानना या उसका नव उन्मेष मानना यह तर्कसंगत नहीं है। यह सिद्ध सत्य है कि भक्ति की धारा जटिल कर्मकांड के विरुद्ध जन सामान्य के लिए एक अमृत तुल्य उपाय था।

मुख्य शब्द

ऋग्वेद, दर्शन, सगुण भक्ति, भारत, भागवत, धर्म।

भक्ति दर्शन भरतीय दार्शनिक चिंतन का एक मौलिक और मधुर पक्ष है। यह ब्रह्म का सहज रसात्मक प्रवाह है। विश्व के सभी धर्मों में भक्ति का स्वरूप और उसका सिद्धान्त पक्ष आपको देखने को मिल जाएगा। चूँकि मनुष्य का मन सहज ही प्रेम और माधुर्य का आकांक्षी होता है, अतः दर्शन में भक्ति का आ जाना अपरिहार्य ही है। कोई

भी धर्म कितना ही रूढ़ और कट्टर विचारधारा का क्यों न हो उसमें भी कालांतर में प्रेम, भक्ति और श्रद्धा का पक्ष किसी न किसी रूप को लेकर प्रवेश कर जाएगा। हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक चिंतन का विषय भक्ति और उसका सिद्धान्त पक्ष ही रहा है।

साहित्य के मनीषियों ने भक्ति आंदोलन को अपने विचारों की परिधि में लाने का अनेक प्रकार से प्रयास किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं ''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश ना रह गया। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।''[1] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति के विकास को भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास माना है इस संदर्भ में वे कहते हैं। इस्लाम जैसे सुगठित, धार्मिक और सामाजिक मतवाद से इस देश का पाला नहीं पड़ा था, इसीलिए नवगत समाज की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधि, इस देश के ऐतिहासिक का सारा ध्यान खींच लेती हैं। यह बात स्वाभाविक तौर पर उचित नहीं है। दुर्भाग्यवश हिंदी साहित्य के अध्ययन और लोक चक्षुगोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हिन्दी साहित्य का संबंध, हिंदू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते हैं। एक यह कि हिंदी साहित्य, एक हतदर्प पराजित जाति की संपत्ति हैं। वह एक निरंतर पतनशील जाति की चिंताओं का मूल प्रतीक हैं। मैं इस्लाम के महत्त्व को भूल नहीं पा रह हूँ लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है। यह बात अत्यंत उप हास्यास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर वह प्रकट हुई दक्षिण में।''[2] आगे वह कहते हैं। ''भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास का श्रेय दक्षिण की आलवार भक्तों को दिया जाना चाहिए। इनकी संख्या बारह मानी गई है लेकिन यहां पर यह बता देना भी आवश्यक है कि तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण भी भक्ति के उद्भव तथा विकास के लिए उत्तरदाई है। इससे भक्ति भावना का आगमन दक्षिण से हुआ है लेकिन भक्ति का प्रवाह वैदिक युग से चला आ रहा था फिर यहां राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों ने इसे बल प्रदान किया।''[3] डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं ''मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिंदुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी, इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था।''[4] ग्रियर्सन का मत है कि चौथी शताब्दी में कुछ ईसाई पादरी मद्रास में उतरे थे उन्हीं के प्रभाव से दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का प्रचार हुआ। इन्होंने भक्ति युग को स्वर्ण युग की संज्ञा दी है। ये कहते हैं ''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी, कोई हिंदू यह नहीं जानता कि यह बात कहां से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चित नहीं कर सकता।''[5]

भक्ति की परिभाषा और उसका संदर्भ विद्वान महानुभावों ने अपने–अपने विचार में मौलिक रूप से दिया है। भक्ति दर्शन में जिस विषय की सबसे अधिक चिंता की गई है उस विषय में भक्ति के उद्भव का कुछ मुख्य ही महत्त्व है। भक्ति के सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष के साथ–साथ उसके उद्भव और स्थान पक्ष की मीमांसा का भी अपना विशेष स्थान है। भक्ति का उद्भव कहाँ हुआ, यह विचारणीय विषय है। अधिकतर विचारक मानते हैं कि भक्ति का उदय दक्षिण भारत में हुआ। जब दक्षिण से रामानंद आये तो भक्ति पूरे उत्तर भारत में फैल गयी। हिंदी साहित्य के प्रमुख विचारकों ने इस सिद्धान्त का खूब प्रचार किया है। प्रायः इस विषय में भागवत महापुराण का एक श्लोक प्रमाण रूप में दिया जाता है जिसमें भक्ति को मानवीय प्रतीक के रूप में एक स्त्री के स्वरूप में दिखलाया जाता है, जिसके ज्ञान और वैराग्य दो पुत्र हैं दोनों वृद्ध हो चुके हैं। भक्ति उत्तरभारत के तीर्थ वृंदावन में आती है और फिर इसका कष्ट दूर हो जाता है, उसके दोनों पुत्र पुनः युवा हो जाते हैं और वह अपने यौवन को प्राप्त हो जाती है। अपने उदय के विषय में स्त्री स्वरूपा भक्ति स्वयं कहती है कि– ''मैं द्रविड़ देश मे उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बड़ी हुई, कहीं–कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई और गुजरात में मुझको बुढ़ापे ने घेर लिया। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखंडियों

ने मुझे अंग भंग कर दिया। चिरकाल तक यह अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ दुर्बल और निस्तेज हो गयी। अब जब से मैं वृंदावन आयी हूँ तब से पुनः रूपवती हो गयी हूँ।''[6] भक्ति शास्त्र के इस श्लोक के आधार पर ही अनेक विद्वान मानते हैं कि भक्ति का उदय दक्षिण भारत से हुआ है, किंतु यह तथ्य प्राप्त प्रस्तुत साक्ष्य और प्रमाणों के आलोक में सत्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि भक्ति का उदय दक्षिण भारत से नहीं अपितु उत्तर भारत से होना सिद्ध होता है। भक्ति का उदय उत्तर भारत से है इसके प्रबल प्रमाण साहित्य में विद्यमान हैं। डॉ. राजबली पाण्डेय अपने द्वारा संपादित ग्रंथ हिंदू धर्म कोश में कहते हैं।'' भक्ति का उदय वैदिक काल से ही दिखाई पड़ता है। देवों के रूपदर्शन, उनकी स्तुति के गायन, उनके साहचर्य के लिए उत्सुकता, उनके प्रति समर्पण आदि में आनंद का अनुभव, ये सभी उपादान वेदों में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। ऋग्वेद के विष्णु सूक्त और वरुण सूक्त में भक्ति के मूल तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। वैष्णव भक्ति की गंगोत्री विष्णु सूक्त ही है। ब्राह्मण साहित्य में कर्मकांड के प्रचार के कारण भक्ति का स्वर कुछ मंद पड़ जाता है, किंतु उपनिषदों में उपासना की प्रधानता से निर्गुण भक्ति और कहीं–कहीं प्रतीक उपासना पुनः जागृत होती है। छांदोग्योपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद, मुंडकोपनिषद् आदि में विष्णु, शिव, रूद्र, अच्युत, नारायण, सूर्य आदि की भक्ति और उपासना के पर्याप्त संकेत पाए जाते हैं। वैदिक भक्ति की पयस्विनी महाभारत काल तक आते–आते विस्तृत होने लगी। वैष्णव भक्ति की भागवतधारा का विकास इसी काल में हुआ। यादवों की सात्वत शाखा में प्रवृत्तिप्रधान भागवत धर्म का उत्कर्ष हुआ। सात्त्वतों ने ही मथुरा, वृंदावन से लेकर मध्य भारत, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक होते हुए तमिल (द्रविड़) प्रदेश तक प्रवृत्तिमूलक रागात्मक भागवत धर्म का प्रचार किया। अभी तक वैष्णव अथवा शैव भक्ति के उपास्य देवगण अथवा परमेश्वर ही थे। महाभारत काल में वैष्णव भागवत धर्म को एक ऐतिहासिक उपास्य का आधार कृष्ण वासुदेव के व्यक्तित्व में मिला। कृष्ण विष्णु के अवतार माने गए और धीरे–धीरे ब्रह्म से उनका तादात्म्य हो गया। इस प्रकार नर देहधारी विष्णु की भक्ति जनसाधारण के लिए सुलभ हो गयी। इससे पूर्व यह धर्म एकांतिक, नारायणीय सात्वत आदि नामों से पुकारा जाता था। कृष्ण– वासुदेव भक्ति के उदय के पश्चात् यह भागवत धर्म कहलाने लगा। भागवत धर्म के इस रूप के उदय का काल लगभग 1400 ई. पूर्व है। तब से लेकर लगभग छठी शताब्दी तक यह अविच्छिन्न रूप से चलता रहा। बीच में शैव– शाक्त संप्रदाय तथा शांकर वेदांत के प्रचार से भागवत धर्म का प्रचार कुछ मंद पड़ गया परंतु पूर्व मध्य युग में इसका पुनरुत्थान हुआ। भागवत धर्म का नवोदित रूप इसका प्रमाण है। रामानुज, मध्व आदि ने भागवत धर्म को और पल्लवित किया और आगे चलकर एकनाथ, रामानंद, चैतन्य, वल्लभाचार्य आदि ने भक्ति मार्ग का जन सामान्य तथा व्यापक प्रचार किया। मध्ययुग में सभी प्रदेशों के संत और भक्त कवियों ने भक्ति के सार्वजनिक प्रचार में प्रभूत योग दिया।''[7]

ऋग्वेद का रचनाकाल सामान्य रूप से 1500 ई. पूर्व से 3000 ई. पूर्व का माना जाता है और ऋग्वेद उत्तरभारत रची गयी अति प्रामाणिक रचना है। भक्ति के बीज और विकास का उत्तर भारत में उद्भूत होने का यह एक प्रबल साक्ष्य है। भक्ति के मुख्य आराधना केंद्र उत्तर भारत में ही प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं। विष्णु भक्ति का केंद्र बद्रिकाश्रम (उत्तराखंड), शिव भक्ति का केंद्र कैलाश, कृष्ण भक्ति का केंद्र मथुरा, वृंदावन,गोकुल, गोवर्धन और बरसाना, रामभक्ति का प्रधान केंद्र अयोध्या स्पष्ट है। यह सभी केंद्र अति प्राचीन भक्ति के आश्रय स्थल और बड़े ही पूजनीय रहे हैं। भक्ति के प्रमुख आचार्य नारद और शांडिल्य भी उत्तर भारत के ही आचार्य थे। व्यास जिन्होंने पौराणिक भक्ति साहित्य का घनघोर सृजन किया उत्तर भारत के कुरु जनपद के पूजनीय आचार्य और वंशज थे।

ऋग्वेद में ही हमें सर्वप्रथम भक्ति का साक्ष्य प्राप्त होता है और भक्ति के विभिन्न रूपों की परिकल्पना भी हमें ऋग्वेद के सूक्तों में दिखाई देती है। हिंदू धर्म के सभी मूल तत्त्व मूल रूप से ऋग्वेद में वर्तमान हैं। वास्तव में ऋग्वेद हिंदू धर्म और दर्शन की आधारशिला है। भारतीय कला और विज्ञान दोनों का उदय यहीं पर होता है। विश्व के मूल में रहने वाली सत्ता के अव्यक्त और व्यक्त रूप में विश्वास, मंत्र, यज्ञ अभिचार आदि से उसके पूजन और यजन आदि मौलिक धार्मिक तत्त्व ऋग्वेद में पाए जाते हैं। इसी प्रकार तत्त्वों को जानने की जिज्ञासा जानने के प्रकार तत्त्वों के रूपकात्मक वर्णन, मानव जीवन की आकांक्षाओं आदर्शों तथा मंतव्य आदि प्रश्नों पर ऋग्वेद से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दर्शन की मूल समस्याओं ब्रह्म, आत्मा, माया, कर्म, पुनर्जन्म आदि का स्रोत भी ऋग्वेद में पाया जाता है। देववाद,

एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद, अद्वैतवाद, संदेहवाद आदि दार्शनिक वादों का भी प्रारंभ ऋग्वेद में ही दिखाई देता है।[8]

उक्त समस्त साक्ष्यों के परिदृश्य में यह कहना कि भक्ति का उदय छठी शताब्दी में या उसके आसपास दक्षिण भारत में आलवारों के भाव और विचारों से हुआ एक विचारणीय विषय है। आलवार भी उन विष्णु और शिव की उपासना में लीन थे जिनके प्रमाण वेदों में हमें मिलते हैं। वह भी ऋग्वेद के सूक्तों की रचना के रूप में और यह वेद संहिता साहित्य के रूप में उत्तर भारत के सिंध प्रांत में लिखी गयी प्रामाणिक रचना है। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा अपने ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश' में कहते हैं ''बहुत से लोग मानते हैं और भागवत में भी ऐसा लिखा है कि भक्ति द्रविड़ देश से उत्तर में आई परंतु भक्ति की धारा भागवत से बहुत पुरानी है। उसका स्रोत ग्रंथ ऋग्वेद है और ऋग्वेद के बाद पश्चिमी एशिया में बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट में यह धारा बहुत जगह दिखाई देती है, कई जगह वैदिक धारा से उसका साम्य भी है। उसके बाद वह ईसा मसीह के उपदेशों में है। ईसा की भक्ति और भारतीय कवियों की भक्ति में इतनी समानता है कि अनेक विदेशी विद्वान समझने लगे कि भक्ति आंदोलन भारत में ईसाईयों के प्रभाव से प्रवर्तित हुआ। मनुष्य का पापबोध और उसके साथ आत्म परिष्कार की भावनाए ये दो बातें उतनी ही पुरानी है जितना ऋग्वेद है और देशी–विदेशी भक्ति में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। परंतु बाद की भक्ति में रूप की उपासना शामिल है। संन्यास से हटकर गृहस्थाश्रम और संसार की वास्तविकता पर बल है, इसलिए ऋग्वेद को भक्ति का स्रोत ग्रंथ मानते हुए विष्णु पुराण और भागवत का उल्लेख भी मैंने इसी प्रसंग में किया है।''[9]

निष्कर्ष

भक्ति के प्रधान देवता भगवान विष्णु और उनके स्वरूप अवतार मुख्यतः हैं। इनके संकेत वैदिक ग्रंथों में और वेदोत्तर ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। उत्तर भारत ही भक्ति का प्रबल और प्रधान केंद्र था। वहीं से भक्ति की धारा भगवान के विभिन्न स्वरूपों का आलंबन लेकर संपूर्ण भारत ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व के धर्मों में परिव्याप्त हो गई। भगवान विष्णु नारायण, वासुदेव, कृष्ण और भगवान राम के स्वरूप को उत्तर भारत के महान ऋषियों ने इस तरह एकाकार कर दिया कि उनमें अभेद स्थापित हो गया। विष्णु जी के 24 अवतार और उनसे पृथक भक्ति के अन्य किसी आलंबन की कल्पना भी लेश मात्र वैष्णव शास्त्र में कहीं भी प्राप्त नहीं होती है। अतः उक्त प्रमाणों के संदर्भ से यह सिद्ध होता है कि भक्ति के प्रारंभिक स्रोत हमें ऋग्वेद से लेकर सूत्र काल में महाभारत तक में देखने को मिलते हैं। इन सब को देख कर फिर भी यह परिकल्पना करना कि भक्ति का उदय दक्षिण भारत में हुआ है अत्यंत ही चिंता का विषय है। भक्ति आंदोलन मध्यकाल की कोई विशिष्ट घटना नहीं है, अपितु यह आंदोलन प्राचीन काल से ही भारतीय दर्शन की मूल चिंतन पद्धति में समाहित रहा है। भारतीय भाषाओं में और भारतीय चिंतन पद्धति में भगवान के विभिन्न रूपों और उनकी लीलाओं के वर्णन में हमें देखने को मिलता है। भगवान की इन्हीं लीलाओं को आधार बनाकर समाज में भक्ति रस का साहचर्य देखने को मिलता है। भगवान की लीलाओं का आधार पूरी तरह से वैदिक है। न यह आगत है, ना इसका पुनः नवोन्मेष हुआ है। अनादिकाल से ही भक्ति रस की यह परंपरा वैदिक छांदस संस्कृत से होती हुई लौकिक संस्कृत में आई और लौकिक संस्कृत से होती हुई लोक भाषाओं में समाहित हो गई, जो वर्तमान में भी अपनी विभिन्न भाव पद्धतियों को लेकर समाज में अपने रसात्मक स्वरूप को व्यापक बनाए हुए है।

संदर्भ सूची

1. आचार्य शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास।
2. आचार्य द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका।
3. आचार्य द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका।
4. वर्मा रामकुमार, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
5. जॉर्ज ग्रियर्सन, द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान।

6. उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्नाटके गता। क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता–तत्र घोर कलेर्योगात् पाखण्डैः खण्डिताङ्गका। दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्/वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी। जाताहं उवती सम्यक् श्रेष्ठरूपा तु सांप्रतम्/भगवत महापुराण। प्रथम अध्याय। 48/49/50 श्लोक।

7. हिन्दू धर्म कोश, संपादक डॉ. राजबली पाण्डेय, पृष्ठ 464, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ।

8. शर्मा रामविलास, *भूमिका–भारतीय संस्कृत और हिंदी प्रदेश,* किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।

9. हिन्दू धर्म कोश, संपादक डॉ. राजबली पाण्डेय, पृष्ठ 136, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ।

––==00==––